

इकाई 22 क्षमता का निम्न उपयोग

इकाई की रूपरेखा

- 22.0 उद्देश्य
- 22.1 प्रस्तावना
- 22.2 महत्वपूर्ण अवधारणाओं की परिभाषाएँ
- 22.3 'क्षमता के उपयोग' की अवधारणा का महत्व
- 22.4 'क्षमता के उपयोग' के उपलब्ध माप
- 22.5 भारत में 'क्षमता के उपयोग' में दीर्घकालीन प्रवृत्तियाँ
 - 22.5.1 औद्योगिक क्षमता का "अल्प उपयोग" क्यों अवांछनीय है?
 - 22.5.2 भारत के औद्योगिक क्षेत्र में क्षमता के अल्प उपयोग की समस्या
 - 22.5.3 वर्ष 1985 से सुधार
- 22.6 1990 के दशक में औद्योगिक सुधार और 'क्षमता का उपयोग'
 - 22.6.1 1990 के दशक के औद्योगिक सुधार
 - 22.6.2 1990 के दशक में औद्योगिक क्षेत्र में 'क्षमता के उपयोग'
- 22.7 सुझाए गए नीतिगत उपाय
- 22.8 सारांश
- 22.9 शब्दावली
- 22.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ
- 22.11 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

22.0 उद्देश्य

खंड 6 की इस इकाई में, हम भारतीय उद्योगों में निवेश और उत्पादकता वृद्धि की प्रक्रिया को समझने के लिए "क्षमता के उपयोग" की अवधारणा और घटना का विश्लेषण करेंगे। यह अवधारणा आर्थिक सिद्धांत एवं व्यवहारिक विश्लेषण में एक अहम भूमिका अदा करती है, इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- औद्योगिक क्षेत्र के लिए कार्य निष्पादन सूचक के रूप में क्षमता (अथवा संभावित उत्पादन) और 'क्षमता के उपयोग' जैसी अवधारणाओं की प्रासंगिकता समझ सकेंगे;
- 'क्षमता के उपयोग' के उपलब्ध माप के संबंध में जान सकेंगे;
- भारतीय उद्योगों में क्षमता के निम्न उपयोग की समस्या की प्रकृति समझ सकेंगे;
- भारतीय उद्योगों में 'क्षमता के उपयोग' दर पर हाल के औद्योगिक सुधारों का प्रभाव समझ पाएँगे; और
- भारतीय उद्योगों में क्षमता के निम्न उपयोग की समस्या के समाधान के लिए सुझाई गई नीतियों को समझ सकेंगे।

22.1 प्रस्तावना

औद्योगिक उत्पादकता में तीव्र वृद्धि को इस समय विकसित अर्थव्यवस्थाओं के विकास और संरचनात्मक रूपांतरण में अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार किया जाता है। औद्योगिक उत्पादकता औद्योगिक क्षेत्र में अभिनियोजित घटक आदानों (मुख्य रूप से भूमि, श्रम और पूँजी) की दी गई मात्रा से उत्पादन किए गए निर्गत की मात्रा मापता है। हालाँकि, उत्पादकता में वृद्धि एक व्यापक

अवधारणा है जो स्वयं में अनेक कारकों, जैसे विद्यमान क्षमताओं का बेहतर उपयोग, कार्य करते हुए सीखने, श्रमिक की बढ़ी हुई कार्य कुशलता इत्यादि, के प्रभाव को समेटता है। इस प्रकार, क्षमता के उपयोग उत्पादकता में वृद्धि के सबसे महत्वपूर्ण निर्धारकों में से एक है।

यद्यपि भारत ने सामान्यतया यथोचित समष्टि (मैक्रो) आर्थिक नीतियों का अनुसरण किया है, इसके दीर्घकालीन विकास का रिकार्ड अत्यन्त ही असंतोषप्रद रहा है। वर्ष 1960 से इसके प्रति व्यक्ति आय में 2 प्रतिशत से भी कम की वृद्धि हो रही है। लगभग चार दशकों तक आर्थिक निर्णयों में सरकार के व्यापक हस्तक्षेप, इसके साथ ही अन्तर्मुखी व्यापार और निवेश नीतियों के परिणाम स्वरूप विशेष रूप से औद्योगिक क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक क्षमता का निर्माण हुआ और निवेश पर प्रतिलाभ की दर कम हुई। वर्ष 1950 से 1980 के अंत तक 30 वर्षों की अवधि के दौरान औद्योगिक क्षेत्र के लिए यौगिक वृद्धि-दर मात्र 5.2 प्रतिशत थी।

1980 के दशक के दौरान औद्योगिक उत्पादन और उत्पादकता में कुछ सुधार दिखाई दिया और इस दशक के दौरान औद्योगिक उत्पादन में यौगिक वृद्धि दर 7 प्रतिशत रही। इस परिवर्तन का मूल कारण नीतियों में परिवर्तन था जिसमें कुछ हद तक नियमों में ढील दी गई थी और बाजारोन्मुखी रूझान बढ़ा था। तथापि, 1991 के बाद से ही भारतीय प्राधिकारियों ने व्यापक सरकारी हस्तक्षेप को कम करके अर्थव्यवस्था को उदार बनाने का सुनियोजित प्रयास किया। उदारीकरण के लिए आरम्भिक प्रेरणा 1990-91 के गंभीर भुगतान-संतुलन संकट से प्राप्त हुई। इस संकट की संरचनात्मक सुधार शुरू करने के लिए अवसर में बदल दिया गया जिसकी जड़ें भारत की विकास रणनीति के मौलिक पुनर्चिंतन में ही जड़ित थी? संरचनात्मक सुधार प्रारम्भ में औद्योगिक क्षेत्र और व्यापार उदारीकरण पर केन्द्रित रहा। इसका लक्ष्य विशेषकर निवेश और आयात लाइसेंस की जरूरतों को समाप्त कर देना था। उदारीकरण प्रक्रिया ने औद्योगिक क्षेत्र में प्रवेश तथा वृद्धि संबंधी बाधाओं को समाप्त कर और प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देकर उनके काम करने के परिवेश में आमूल परिवर्तन कर दिया। प्रतिस्पर्धा और कार्यकुशलता में वृद्धि से यह आशा हुई कि नियोजित विकास के पहले के वर्षों में जो अप्रयुक्त उत्पादन क्षमता सृजित की गई थी वह या तो नहीं रह जाएगी अथवा इसमें भारी कमी होगी।

यद्यपि कि 1990 में शुरू किए गए सुधारों की उपलब्धियाँ काफी रही हैं फिर भी ये सुधार किसी भी तरह से पूर्ण नहीं हैं तथा कई कारक हैं जिनके कारण औद्योगिक क्षेत्र में बड़े पैमाने पर निवेश नहीं हुआ और उत्पादक क्षमता का बेहतर उपयोग नहीं हो सका जो कि भारत में सतत् तौर विकास के लिए एक पूर्व शर्त है। इस इकाई में, हम भारतीय औद्योगिक क्षेत्र के “क्षमता के उपयोग” रिकार्ड तथा कार्य निष्पादन के इस सूचक पर विभिन्न विकास रणनीतियों के प्रभाव की चर्चा इस दृष्टि से करेंगे कि बचे रह गए संरचनात्मक बाधाओं की पहचान कर सकें। तथापि, पहले औद्योगिक क्षेत्र के कार्यनिष्पादन को समझने में इस सूचक के महत्त्व को जानना उपयोगी होगा।

22.2 महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं की परिभाषाएँ

- 1) **क्षमता अथवा क्षमता निर्गत** : क्षमता एक ऐसी अवधारणा है जो अनिश्चित है और इसका माप कठिन है। यह समय के साथ और आर्थिक दशाओं के अनुरूप बदलती रहती है। लागत और उत्पादन का आर्थिक सिद्धान्त क्षमता निर्गत की परिभाषा, निर्गत जिस पर अल्पकालीन और दीर्घकालीन औसत कुल लागत वक्र एक दूसरे का स्पर्श करते हैं, के रूप में करता है। दीर्घकालीन समानुपातिक प्रतिलाभ की दशाओं के अंतर्गत क्षमता निर्गत अल्पकालीन औसत कुल लागत वक्र की न्यूनतम बिन्दु पर निर्गत के समान होता है। जोहानसन (1968) क्षमता निर्गत की परिभाषा इस प्रकार करते हैं “.....विद्यमान संयंत्र और उपकरण से समय की प्रति इकाई उत्पादित की जा सकने वाली अधिकतम मात्रा, बशर्ते कि उत्पादन के चार कारक (जैसे कच्चा माल अथवा श्रम इत्यादि) की उपलब्धता प्रतिबन्धित नहीं हो।”

- 2) 'क्षमता के उपयोग' : किसी भी अस्तित्व (चाहे यह एक फर्म हो अथवा एक उद्योग हो अथवा एक अर्थव्यवस्था हो) के लिए 'क्षमता के उपयोग' दर की परिभाषा सतत् अधिकतम निर्गत (अथवा क्षमता निर्गत) द्वारा विभाजित वास्तविक निर्गत के रूप में किया जा सकता है। 'क्षमता की उपयोग' दर, जब इसकी माप एक-एक फर्म अथवा उद्योग के लिए की जाती है तो यह शत प्रतिशत से अधिक हो सकती है और बहुधा ऐसा होता भी है क्योंकि कभी-कभी सतत् अधिकतम निर्गत अस्थायी रूप से प्राप्य चरम उत्पादन से कम है। तथापि, समस्त अर्थव्यवस्था के लिए, 'क्षमता का उपयोग' शत-प्रतिशत तक नहीं पहुँचता है क्योंकि अलग-अलग फर्म आर्थिक चक्र के अलग अलग चरणों में अपने चरम पर पहुँचते हैं। एक उद्योग में संकट से आपूर्ति बाधित होती है और परिणामस्वरूप दूसरे में उत्पादन बाधित हो जाता है। उदाहरण के लिए: बड़े चक्रीय चरम चरणों के दौरान (अर्थात् आर्थिक क्रिया कलाप में तेजी) इस्पात की कमी से कतिपय उपभोक्ता वस्तुओं अथवा व्यापारिक मशीनों का उत्पादन सीमित हो सकता है और यह उन उद्योगों में 'क्षमता के उपयोग' को बाधित कर सकता है।

22.3' क्षमता के उपयोग की अवधारणा का महत्त्व

विद्यमान क्षमता का जिस सीमा तक उपयोग किया जा रहा है उसमें अंतर इस बात का द्योतक है कि विशेष फर्म, उद्योग अथवा अर्थव्यवस्था का आपूर्ति पक्ष अपनी माँग पक्ष के सापेक्षिक किस तरह से विकास कर रहा है।

भारत जैसे विकासशील देशों (जहाँ पूँजी की कमी की विकट समस्या रहती है) के लिए, यह माप विशेष महत्त्व रखता है क्योंकि विद्यमान क्षमता के बेहतर उपयोग से अतिरिक्त पूँजी अथवा श्रम के निवेश के बिना ही विकास संभव हो जाता है। स्वयं सिद्ध अध्ययनों से पुष्ट होता है कि उत्पादन के कारकों (जैसे पूँजी अथवा श्रम) में वृद्धि को उत्पादन में आधे से भी कम वृद्धि के लिए जिम्मेदार कहा जा सकता है और उच्च उत्पादकता को अन्य कारणों के संदर्भ में समझा जा सकता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'क्षमता के उपयोग' उत्पादकता के सबसे महत्त्वपूर्ण निर्धारकों में से एक है क्योंकि विद्यमान क्षमता के बढ़े हुए उपयोग से उत्पादन लागत में कमी होती है (निर्गत को न्यूनतम अल्पकालीन औसत कुल लागत के बिन्दु के निकट लाने से) और लाभप्रदता बढ़ती है तथा आंतरिक संसाधनों का सृजन होता है।

'क्षमता के उपयोग' के माप कई आधुनिक व्यापार चक्र सिद्धान्तों विशेषकर वे जो त्वरण सिद्धान्त पर आधारित हैं में प्रमुख परिवर्ती हैं।

व्यापार चक्र लक्षण विकास के दौर में आर्थिक कार्यकलाप में लगभग नियमित रूप से बारी-बारी से आने वाला विस्तार (तेजी) और संकुचन (मंदी) है। विस्तार (अथवा तेजी) के दौरान उत्पादन के कारकों का नियोजन बढ़ जाता है (जो विद्यमान क्षमता के उच्चतर उपयोग का सूचक है) जिससे आय में वृद्धि होती है, माँग का सृजन होता है, परिणाम स्वरूप विद्यमान क्षमताओं का और अधिक उपयोग होता है और इसी तरह से प्रक्रिया आगे बढ़ती रहती है। इसे "गुणक" प्रभाव के नाम से जाना जाता है। तथापि, शीघ्र ही उत्पादकों को क्षमता संबंधी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। यदि वे इस बात के लिए आश्वस्त रहते हैं कि माँग में तेजी रहेगी (सकारात्मक प्रत्याशा), तो वे नए संयंत्र और मशीनों में अधिक निवेश करते हैं (अर्थात् अधिक क्षमता का सृजन), जिससे और अधिक माँग पैदा होती है। इसे त्वरक प्रभाव कहते हैं।

यह उर्ध्वगामी गतिशीलता अनंतकाल तक जारी नहीं रह सकती है। अंततः उत्पादन विभिन्न बाधाओं और आपूर्ति कठिनाइयों के कारण उच्चतम सीमा तक पहुँच जाता है। निवेश निधियों की माँग से ब्याज दर उस बिन्दु तक जा पहुँचती है जहाँ नया निवेश करना लाभप्रद नहीं रह जाए। इससे निवेश माँग घटेगी। उपभोक्ताओं द्वारा निरन्तर माँग के बावजूद भी, निवेश माँग में गिरावट

से कुल उत्पादन के स्तर में गिरावट आती है। निवेश माँग में गिरावट आने के साथ, पूँजीगत मालों का उत्पादक, श्रमिकों की संख्या में कटौती शुरू कर देते हैं। बढ़ती हुई बेरोज़गारी से उपभोक्ता माँग घटती है। गुणक, प्रत्याशा और त्वरक सिद्धान्त प्रतिकूल दिशा में काम करने लगते हैं तथा आर्थिक संकुचन की प्रक्रिया तेज हो जाती है।

उत्पादन में गिरावट अनंतकाल तक जारी नहीं रहता। यह किसी न किसी न्यूनतम स्तर तक पहुँच कर रुक जाता है, क्योंकि जो कर्मचारी, सरकार के अधीन अथवा ऐसे उद्योगों में जो आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति करते हैं में स्थायी रूप से नियोजित होते हैं, का रोज़गार सुरक्षित रहता है और परिणामस्वरूप उनकी खर्च करने की क्षमता भी बनी रहती है। निवेश निधियों की कम माँग के फलस्वरूप ब्याज दरों में कमी आ सकती है जिससे नया और स्थानापन्न निवेश अधिक आकर्षक बन सकता है। उपभोक्ताओं की निरंतर माँग बनी रहने से, यह निवेश माँग ही है (जो नई क्षमताओं के सृजन को प्रेरित करता है), जो अर्थव्यवस्था को फिर से ऊपर उठाता है।

“क्षमता के उपयोग” की अवधारणा का एक अन्य महत्वपूर्ण उपयोग यह है कि इससे स्फीतिकारक दबाव का पता चलता है। उदाहरण के लिए, क्षमता के उच्च उपयोग के साथ तेज आर्थिक वृद्धि से स्फीतिकारक दबाव के संकेत मिलते हैं। यदि किसी अर्थव्यवस्था की क्षमता का उपयोग दर कुल मिलाकर अपने अधिकतम स्तर के करीब है तो माँग में थोड़ी भी वृद्धि को पूरा करने के लिए उत्पादन में तब तक वृद्धि नहीं की जा सकती जब तक कि विनिर्माता अतिरिक्त निवेश नहीं करता है। इस स्थिति में, उच्चतर माँग का सीधा प्रभाव मूल्यों पर पड़ता है क्योंकि उत्पादन की आपूर्ति पहले ही अधिकतम सीमा तक पहुँच चुकी है।

यद्यपि कि ‘क्षमता के उपयोग’ दरों में उतार-चढ़ाव के कारणों के बारे में सर्वसम्मति नहीं है, फिर भी इसपर नियत निवेश और स्टॉक चक्र, बाह्य प्रभाव तथा सरकार की समष्टि आर्थिक नीतियों का मुख्य रूप से प्रभाव पड़ता है।

22.4 क्षमता के उपयोग के उपलब्ध माप

इस भाग का उद्देश्य “क्षमता के उपयोग” का व्यावहारिक वैकल्पिक माप प्रस्तुत करना है। संख्यात्मक “क्षमता के उपयोग” मापों के अभिकलन के विभिन्न साधनों का व्यापक सर्वेक्षण इस पाठ्यक्रम के क्षेत्र से बाहर है। तथापि, यहाँ तीन सर्वाधिक प्रचलित पद्धतियों की उनके अंतर्निहित महत्त्व के संदर्भ में संक्षेप में समीक्षा की गई है।

1) एक रिकार्ड स्तर से दूसरे रिकार्ड स्तर तक माप : यह दृष्टिकोण समय के बीच उत्पादन के प्राप्त स्तर (अर्थात् वास्तविक उत्पादन) के खण्ड की जाँच द्वारा सभी आदानों के प्रयोग की मात्रा की माप करने का प्रयास करता है। उत्पादन के एक खण्ड में, सापेक्षिक आवधिक रिकार्ड को सभी संसाधनों के पूर्ण उपयोग के बिन्दु के रूप में लिया जाता है। बाद में इन रिकार्ड स्तर बिन्दुओं को सीधी रेखा से जोड़ दिया जाता है जो क्षमता उत्पादन के पथ को दर्शाने के लिए नवीनतम रिकार्ड स्तर बिन्दु के भी बाहर जा सकते हैं। उसके बाद संख्यात्मक ‘क्षमता के उपयोग’ का माप, क्षमता उत्पादन की तुलना में वास्तविक उत्पादन के अनुपात की गणना के रूप में किया जाता है। इस दृष्टिकोण का सबसे पहला लाभ यह है कि यह आदान संबंधी आँकड़ों की बजाए सिर्फ उत्पादन संबंधी आँकड़ों का उपयोग करके क्षमता के उपयोग की गणना करता है। सामान्यतया, आदान संबंधी आँकड़े बहुत धीरे-धीरे आते हैं और इनमें अंतराल भी काफी होता है।

2) सर्वेक्षण आधारित माप : संख्यात्मक ‘क्षमता के उपयोग’ अनुपात प्राप्त करने का सबसे प्रत्यक्ष और स्पष्ट साधन फर्मों से ही उनके उपलब्ध ‘क्षमता के उपयोग’ की सीमा के

संबंध में उनके अपने मूल्यांकन के बारे में पूछना है। प्रायः सभी औद्योगिक देश अब व्यापार के मासिक सर्वेक्षण में इस प्रश्न को सम्मिलित करते हैं। भारत में भी, कंपनियों के लिए अपने विभिन्न उत्पादों की अधिष्ठापित क्षमता और वास्तविक उत्पादन के संबंध में जानकारी (माप की वास्तविक इकाइयों में) अपने वार्षिक प्रतिवेदनों की एक अनुसूची में प्रकाशित करना अनिवार्य कर दिया गया है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से इस समय यह भारत में उपलब्ध 'क्षमता के उपयोग' का सबसे सुगम और समयोचित सूचक है।

- 3) **उत्पाद फलन दृष्टिकोण** : यह दृष्टिकोण उत्पादन के आर्थिक सिद्धान्त को 'क्षमता के उपयोग' का माप निकालने के लिए क्षेत्रगत अथवा उद्योग स्तर पर लागू करने का प्रयास है। उत्पाद फलन उपागम का भी 'एक रिकार्ड स्तर से दूसरे रिकार्ड स्तर तक' पद्धति की ही भांति सभी उपलब्ध आदानों का पूरी तरह से उपयोग करके उत्पादित किए जा सकने योग्य निर्गत का स्तर मापने का प्रयास है। तथापि, इस उपागम में आदानों (अर्थात् पूँजी और श्रम), प्रौद्योगिकी की स्थिति और निर्गत के बीच किसी प्रकार के कार्यात्मक संबंध का विशेष विवरण तथा अनुमानों का होना आवश्यक है। एक बार जब किसी भी उद्योग अथवा क्षेत्र के लिए उत्पाद फलन का अनुमान कर लिया जाता है (अर्थात् एक समीकरण के रूप में), तब क्षमता निर्गत की गणना उस बिन्दु पर जहाँ सभी संसाधनों का पूरी तरह से उपयोग किया जा रहा है, इसका आकलन करके की जा सकती है। इस प्रकार के उपागम का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि क्षमता निर्गत में परिवर्तन का इसके अलग-अलग घटकों : पूँजी स्टॉक वृद्धि, प्रौद्योगिकीय प्रगति और संभाव्य श्रम आपूर्ति में वृद्धि में विश्लेषण किया जा सकता है। यह 'एक रिकार्ड स्तर से दूसरे रिकार्ड स्तर तक' और सर्वेक्षण आधारित मापों से भिन्न है जिसमें इस तरह के विश्लेषण की कोई संभावना नहीं है।

बोध प्रश्न 1

- 1) संभाव्य क्षमता निर्गत और 'क्षमता के उपयोग' की अवधारणा की परिभाषा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

- 2) व्यापार-चक्र के विश्लेषण में 'क्षमता के उपयोग' की अवधारणा का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

- 3) 'क्षमता के उपयोग' के वैकल्पिक मापों का वर्णन कीजिए तथा उनकी अलग-अलग विशेषताएँ क्या हैं।

.....

.....

.....

22.5 भारत में 'क्षमता के उपयोग' में दीर्घकालीन प्रवृत्तियाँ

भारतीय आयोगकों और नीति निर्माताओं की चिंता सदैव ही भारतीय उद्योगों में अपेक्षाकृत काफी कम 'क्षमता के उपयोग' के प्रति रही है। भारत जैसी अल्प पूँजी अर्थव्यवस्था में पूँजी का विकल्प लागत बहुत ज्यादा है तथा अल्प 'क्षमता के उपयोग' का अर्थ संसाधनों की भारी बर्बादी है।

22.5.1 औद्योगिक क्षमता का "अल्प उपयोग" क्यों अवांछनीय है?

औद्योगिक क्षेत्र में क्षमता के अल्प उपयोग का अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसका विशेष प्रभाव इन रूपों में देखा जा सकता है- (क) औद्योगिक कार्यकलापों में कुल मिलाकर मंदी और अन्य क्षेत्रों जैसे कृषि एवं सेवाओं पर औद्योगिक क्षेत्र के साथ उनके पश्चानुबंध (बैकवर्ड लिंकेज) तथा अग्रानुबंध (फारवर्ड लिंकेज) के माध्यम से इसका प्रभाव, (ख) उत्पादन की उच्च लागत और क्षमता का इष्टतम उपयोग नहीं होने के कारण औद्योगिक क्षेत्र में राजस्व का कम सृजन और (ग) भावी आर्थिक संभावनाओं के बारे में अपेक्षाओं पर नकारात्मक प्रभाव।

22.5.2 भारत के औद्योगिक क्षेत्र में क्षमता के अल्प उपयोग की समस्या

भारत में औद्योगिक रणनीति की मुख्य विशेषताओं में से एक औद्योगिक विकास और विनियमन अधिनियम 1951 (आई डी आर ए) के अंतर्गत औद्योगिक लाइसेंसिंग प्रणाली थी जिसका उद्देश्य "सामाजिक रूप से अभीष्ट दिशाओं" में औद्योगिक क्षेत्र में निवेश का प्रवाह प्रशस्त करना था। लाइसेंस प्रणाली ने न सिर्फ नए उद्योगों की स्थापना और उनकी स्थापित क्षमता के विस्तार को ही नियंत्रित किया अपितु प्रौद्योगिकी, उत्पादन-मिश्र, क्षमता, अवस्थिति और आयात घटक को भी नियंत्रित किया। हालाँकि, यथार्थ में औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली के कार्यप्रणाली की विशेषता अत्यधिक संरक्षणशीलता और प्रशासनिक विलम्ब था। सामाजिक रूप से अभीष्ट दिशाओं में निवेश को प्रवाहित करने की बजाए, लाइसेंस प्रणाली के परिणामस्वरूप "समानान्तर" अर्थव्यवस्था का विकास हुआ और प्रच्छन्न निवेश को बल मिला। आम जनता इसे काले धन की अर्थव्यवस्था के रूप में जानती है। इससे भी अधिक, विकास की रणनीति का जोर विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत आधारभूत और पूँजीगत वस्तु क्षेत्र में क्षमता का सृजन करना था। विद्यमान पूँजीगत संपत्तियों के बेहतर प्रयोग की बजाए पूँजी संचय पर विशेष जोर के फलस्वरूप अनेक वर्षों में कई उद्योगों में बड़े पैमाने पर अप्रयुक्त क्षमताओं का सृजन हुआ।

सभी पंचवर्षीय योजनाओं में इस समस्या को स्पष्ट रूप से समझा गया। 'क्षमता के उपयोग' के मुद्दे पर शुरू में किए गए अध्ययनों में एक अध्ययन प्रो. सी.एन. वकील द्वारा वर्ष 1946 से 1953 की अवधि के लिए किया गया था, जिसमें 80 उद्योगों को सम्मिलित किया गया था। इस अध्ययन में यह पाया गया कि इन उद्योगों में से लगभग आधे में पचास प्रतिशत अप्रयुक्त क्षमता थी। इस स्थिति के लिए उत्तरदायी निम्नलिखित प्रत्यक्ष कारणों की पहचान की गई थी : (क) आकस्मिक माँग को पूरा करने के लिए कुछ उद्योगों द्वारा कतिपय आरक्षित क्षमता रखने का प्रचलन (ख) क्षमताओं के सृजन में अविभाज्यता (अर्थात्, उत्पादन संभव करने के लिए कतिपय न्यूनतम पैमाने पर सृजन की अनिवार्यता), और (ग) अपेक्षाओं और परिणामों में अंतर। प्रथम योजना (1951-56) दस्तावेज में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि अनिवार्य वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों में (उस समय)

क्षमताएँ कुल मिलाकर माँग के अनुरूप थीं और विद्यमान संयंत्रों के पुनरुद्धार, आधुनिकीकरण तथा संयंत्र में बेहतर संतुलन कायम करके कार्यकुशलता में सुधार करने की आवश्यकता थी। दूसरी योजना (1956-61) में भी "उन उद्योगों में जहाँ अधिष्ठापित क्षमता और उत्पादन के बीच काफी अंतराल है, विद्यमान अधिष्ठापित क्षमता के पूर्ण उपयोग" के प्रश्न पर बल दिया गया था। इस विषय पर दूसरा महत्वपूर्ण अध्ययन मॉरिस बॉडिन और सैमुएल पॉल द्वारा किया गया। इस अध्ययन में 75 उद्योग सम्मिलित किए गए थे। इस अध्ययन में यह पाया गया कि 1951 से 1959 के बीच की अवधि के दौरान, इन उद्योगों में क्षमताओं के उपयोग में काफी प्रगति हुई थी। सिर्फ वर्ष 1958 इसका अपवाद था जब देश को विदेशी मुद्रा और मंदी के गंभीर संकट का सामना करना पड़ा था। औद्योगिक नीति की प्राथमिकताओं के संबंध में, तीसरी योजना (1961-66) दस्तावेज में कहा गया था कि, "सर्वप्रथम, जहाँ क्षमता और उत्पादन के बीच भारी अंतर है, अथवा जहाँ एक से अधिक पालियों (शिफ्ट) में प्रचालन करके अथवा संतुलनकारी संयंत्र में वृद्धि कर, यदि हासमान लागत पर अधिक उत्पादन प्राप्त करना संभव है, क्षमता विस्तार अथवा नई इकाई की स्थापना से पहले विद्यमान अधिष्ठापित क्षमता का पूरा-पूरा उपयोग जरूर करना चाहिए।" क्षमता के कम उपयोग के कारणों को समझने के लिए राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद् (एन सी ए ई आर) द्वारा किए गए अध्ययन में तीसरी पंचवर्षीय योजना के आरम्भिक वर्षों को लिया गया है। इस अध्ययन में तब क्षमता के कम उपयोग के कारण के रूप में कच्चे मालों की कमी, विदेशी मुद्रा की कमी और कुशल श्रमिक की पूर्ति में कमी जैसे कारकों को चिह्नित किया गया था। तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंत तक क्षमता के कम उपयोग की समस्या अत्यधिक गंभीर हो गई और अनेक उद्योगों को कृषिगत उत्पादन में गिरावट के कारण गंभीर संकट का सामना करना पड़ा।

गोखले इंस्टीट्यूट ऑफ पॉलिटिक्स एण्ड इकनॉमिक्स के शोधकर्त्ताओं द्वारा 1966-67 के लिए किए गए अन्य अध्ययन से भी भारतीय उद्योगों में क्षमता के कम उपयोग के खतरनाक स्थिति तक पहुँच जाने का पता चलता है। इस अध्ययन में विस्तृत उत्पाद-वार उपागम में मूल रूप से मध्यवर्ती (अर्धनिर्मित) और पूँजीगत वस्तु उद्योगों जिसमें लगभग 250 उत्पाद सम्मिलित थे पर विचार किया गया। प्रायः सभी मध्यवर्ती और पूँजीगत वस्तु उद्योगों में लगभग 40 प्रतिशत के करीब क्षमता का कम उपयोग हुआ था। कतिपय उत्पादों जैसे धातु उत्पाद, गैर विद्युत मशीनों और संयंत्र, उर्वरक और खाद्य उद्योगों में 60 प्रतिशत से भी अधिक क्षमता अप्रयुक्त रही। इस अध्ययन में अप्रयुक्त क्षमता की सीमा तथा उसके कारण, उत्तरदाता विनिर्माता इकाईयों द्वारा दी गई जानकारी पर आधारित थी। दो मुख्य कारणों अर्थात् अपर्याप्त माँग और कच्चे माल की कमी से सामान्यता यह निष्कर्ष निकाला गया था कि क्षमता के अल्प उपयोग के संबंध में पहले कारण ने लगभग दोगुनी इकाइयों को प्रभावित किया था।

चौथी योजना (1969-74) अवधि के दौरान, कतिपय उद्योगों में क्षमता सृजन में धीमी गति, औद्योगिक उत्पादन को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक माना गया था। इसके परिणामस्वरूप, उर्वरक, तैयार इस्पात, अल्युमिनियम, विद्युत उत्पादन, कृषि के यंत्रीकरण और कुछ चुने गए उद्योगों में भारी परिमाण में अतिरिक्त क्षमता निर्माण पर जोर दिया गया था। तथापि, यह प्रयास अत्यन्त ही आंशिक था और कतिपय अन्य उद्योगों में, विशेषकर निधियों की कमी के कारण, अतिरिक्त क्षमता के सृजन में अनेक अंतराल थे। इस योजना अवधि के दौरान, अर्थव्यवस्था में औद्योगिक उत्पादन की गति धीमी हुई जिसके परिणामस्वरूप पहले से ही अपर्याप्त महत्वपूर्ण उपभोक्ता वस्तुओं की उपलब्धता कम हो गई। यहाँ तक कि बुनियादी आदानों जैसे इस्पात, रसायनों, धातुओं, विद्युत, कोयला इत्यादि की आपूर्ति भी कम पड़ गई और कुल मिलाकर इसका परिणाम यह हुआ कि मुद्रा स्फीति बहुत बढ़ गयी जिससे औद्योगिक लागत संरचना पर दबाव बढ़ गया। आगे की अवधि के लिए औद्योगिक रणनीति प्रचालन संबंधी बाधाओं को कम करने पर जोर देकर विद्यमान क्षमता के पूरे उपयोग के लिए योजना बनाना था। पाँचवीं योजना (1974-79) अवधि की मुख्य विशेषता सार्वजनिक क्षेत्र में वास्तविक निवेश में शिथिलता और औद्योगिक वृद्धि दर में गिरावट थी। इस

संबंध में, टी एन श्रीनिवासन ने यह तर्क दिया था कि मंद औद्योगिक विकास का मुख्य कारण वास्तविक निवेश विशेषकर सार्वजनिक निवेश में गतिहीनता थी। आई.जे. आहलूवालिया के अनुसार पाँचवीं योजना अवधि के दौरान विद्यमान औद्योगिक और व्यापार नीतियों के विभिन्न पहलुओं की समीक्षा करने के लिए अनेक समितियाँ बनाई गई थीं। इसने 1970 के दशक के अंत में नीति के पुनर्विन्यास की प्रक्रिया को आरम्भ किया जो 1980 के दशक में और तीव्र हो गया। 1970 के दशक के अंत में शुरू किए गए नए नीतिगत उपायों का मुख्य बल भारतीय उद्योगों के लिए नियमों में ढील देना था और इसे नौकरशाही प्रक्रियाओं से मुक्त करना था। कुछ उद्योगों को लाइसेंस से मुक्त करना, कुछ अन्य के लिए नियमों में ढील देना, निजी क्षेत्र के बड़े औद्योगिक घरानों की सहभागिता के अधिक अवसर और प्रत्यक्ष वास्तविक नियंत्रण से हट कर परोक्ष वित्तीय नियंत्रण आदि नीतिगत परिवर्तनों के कुछ मुख्य तत्त्व थे। हालाँकि विकास के लिए प्रेरक के रूप में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका पर इन परिवर्तनों का व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा।

छठी योजना (1980-85) दस्तावेज के अनुसार, “उस समय के औद्योगिक विकास के स्वरूप से प्रभावी माँग की संरचना का पता चलता है जो बारी-बारी से आय के वितरण से निर्धारित होती थी। उन वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में अत्यधिक संसाधनों को लगाया गया जो उच्च आय समूहों के उपयोग की वस्तुएँ थीं- उच्च स्तरीय आवास और नगरीय सुविधाएँ, विमानन और अत्यन्त विशिष्ट यात्रा सुविधाएँ, टेलीफोन सेवाएँ इत्यादि। इस प्रकार कुछ ही क्षेत्रों में औद्योगिक क्षमता के विस्तार और विविधिकरण से व्यवस्था में विकृति का पता चलता है।

22.5.3 वर्ष 1985 से सुधार

सातवीं योजना (1985-90) के आरम्भ में बड़े पैमाने पर रुग्णता और गतिहीनता के मद्देनजर ‘क्षमता के उपयोग’ की सीमा बढ़ाने पर वाद-विवाद की जरूरत अत्यावश्यक हो गई थी। इस वाद-विवाद का केन्द्र अपर्याप्त घरेलू माँग का प्रश्न था। इस अवधि के दौरान निवेश में वृद्धि की दर कम करने की जबर्दस्त जरूरत महसूस की गई थी (पहले की तुलना में सर्वाधिक) ताकि विद्यमान क्षमताओं के उपयोग को इष्टतम किया जा सके और उपर्युक्त लाभ की गुंजाइश को सुनिश्चित किया जा सके।

वर्ष 1985 से क्रमिक दूरगामी नीतिगत निर्णयों से उदारीकरण की प्रक्रिया को और गति मिली। मुख्य सुधार औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली और विनियामक नीतियों में किए गए थे। कुल मिलाकर 25 उद्योगों को लाइसेंस से मुक्त कर दिया गया और “श्रेणी विस्तारण” उत्पादों के माध्यम से उत्पाद के विविधिकरण संबंधी प्रतिबंधों में ढील दी गई जिससे लाइसेंसधारी उत्पादक उनका उत्पादन कर सकते थे। निर्यातकों को आयात संबंधी अधिक स्वतंत्रता मिली, कुछ मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटा दिए गए तथा उनके स्थान पर प्रशुल्क लगाए गए और वित्तीय बाज़ार में भी कुछ उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू की गई। ये नीतियाँ विकास के लिए अनुकूल दशाओं का सृजन करनेवाली थीं। बढ़ी हुई घरेलू माँग, तीव्र निर्यात वृद्धि और उदार आपूर्ति-पक्ष नीतियाँ, इन सबके सक्रिय संयोजन से 1980 के दशक के दौरान प्रतिवर्ष 5.5 प्रतिशत से ज्यादा उत्पादन वृद्धि हुई और इसका कारण आंशिक रूप से 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध के दौरान क्षमताओं का बेहतर उपयोग कहा जा सकता था।

तथापि, सरकार के घाटे में वृद्धि के कारण तीव्र ऋण प्रसार तथा रुपये के मूल्य में निरंतर अवमूल्यन हुआ, मुद्रा-स्फीति की दर 1980 के दशक के मध्य में 5 प्रतिशत से बढ़ कर 1990-91 के अंत तक 12 प्रतिशत से ज्यादा हो गई थी। इससे भी अधिक, निर्यात में काफी अधिक वृद्धि होने के बावजूद भी चालू खाता का घाटा, सकल घरेलू उत्पाद के 2 प्रतिशत से बढ़कर 1990-91 में 3.5 प्रतिशत हो गया। इस घाटे का वित्तपोषण वाणिज्यिक शर्तों पर उधार लेकर तथा अनिवासी भारतीयों से आनेवाली अल्पकालीन जमा राशियों से किया गया, इसके साथ ही सरकारी आरक्षित

निधियों में भी कमी आई। इन परिस्थितियों के कारण बाह्य ऋण भुगतान बोझ में काफी वृद्धि हुई। वर्ष 1990 में मध्य पूर्व में हुए उथल पुथल के दुष्प्रभावों— जिसके परिणामस्वरूप आयातित तेल की लागत में अत्यधिक वृद्धि हुई तथा वहाँ नियोजित कर्मकारों से विप्रेषित धन में कमी आ गई—से बचाव के लिए कुछ खास प्रबन्ध नहीं था। विदेश व्यापार में प्रतिकूल परिस्थितियों और घरेलू राजनीतिक तनावों के कारण भारत की अन्तरराष्ट्रीय साख रेटिंग को कम कर दिया गया और 1990 के मध्य तक बाह्य वाणिज्यिक ऋण मिलने की संभावनाएँ लगभग समाप्त हो गई थीं। इसके साथ ही अनिवासी भारतीयों की जमा राशियों के बड़े पैमाने पर निकासी के फलस्वरूप भारत के सामने विदेशी मुद्रा का अत्यन्त गंभीर संकट खड़ा हो गया जिससे भारत 1991 के आरम्भ में ही भुगतान में चूक के कगार पर पहुँच गया।

1991 के मध्य में अपनाए गए समायोजन रणनीति में चार प्रमुख तत्त्व अन्तर्निहित थे : (i) तात्कालिक स्थिरिकरण उपाय, इनमें रुपये के मूल्य में 19 प्रतिशत अवमूल्यन और ब्याज दरों में वृद्धि उल्लेखनीय है ताकि पुनः विश्वास स्थापित किया जा सके और अल्पकालीन पूँजी निकासी को रोका जा सके; (ii) राजकोषीय समेकन जिसका उद्देश्य केन्द्र सरकार का घाटा जो 1990-91 में सकल घरेलू उत्पाद का 8.5 प्रतिशत था, को कम करके 1992-93 में 5 प्रतिशत तक करना (iii) अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक और द्विपक्षीय खाता समूह के ऋण दाता देशों से पर्याप्त असाधारण ऋण लिया जाए ताकि आयात का न्यूनतम स्तर बनाए रखा जा सके; और (iv) प्रमुख संरचनात्मक सुधारों का आरम्भ, जिसमें शुरू में औद्योगिक विनियमों में ढील देने तथा व्यापारिक उदारीकरण पर बल दिया गया।

बोध प्रश्न 2

1) नियोजित विकास के दशकों में 'क्षमता के उपयोग' के मामले में भारतीय औद्योगिक क्षेत्र का क्या अनुभव रहा है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारतीय अनुभवों के आधार पर आप भारतीय औद्योगिक क्षेत्र में किन कारकों को 'क्षमता के उपयोग' का निर्धारक मानते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) अर्थव्यवस्था में किस तरह के असंतुलनों ने 1991 से शुरू की गई उदारीकरण की प्रक्रिया को प्रेरित किया?

.....

.....

22.6 1990 के दशक में औद्योगिक सुधार और 'क्षमता का उपयोग'

22.6.1 1990 के दशक के औद्योगिक सुधार

वर्ष 1991 से औद्योगिक सुधारों का एक सामान्य उद्देश्य औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादकता तथा कार्यकुशलता को बढ़ाना था। यह कुछ हद तक नए उद्योगों की स्थापना तथा उनके विकास में बाधाओं को समाप्त कर और इस तरह प्रतिस्पर्धा की गुंजाइश बढ़ाकर किया गया। इन सुधारों में मुख्य रूप से औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली और फर्म का आकार संबंधी प्रतिबंध समाप्त करना, विदेशी निवेश के प्रत्यक्ष और विशेष (पोर्ट फोलियो) अन्तर्वाह में उदारीकरण तथा पूँजीगत वस्तुओं, कच्चे मालों और अर्धनिर्मित वस्तुओं का घटते हुए प्रशुल्क दरों पर मुक्त आयात सम्मिलित था। औद्योगिक सुधार नीति का दूसरा प्रमुख तत्त्व उद्योग में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका कम करना और उद्योग को अधिक से अधिक बाह्य अभिविन्यास वाला बनाना था। इस नीति दृष्टिकोण को अपनाने का कारण सार्वजनिक क्षेत्र के घाटा के आकार को कम करना और साथ ही निजी कारपोरेट क्षेत्र के लिए अधिक निवेश योग्य निधियाँ जारी करना था ताकि इसके निवेश व्यय में वृद्धि हो। इतना ही नहीं, औद्योगिक क्षेत्र के अधिक निजीकरण से संसाधनों के उपयोग में कार्यकुशलता बढ़ने तथा औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकी क्षमताओं के शीघ्र निर्माण की आशा की गई थी।

22.6.2 1990 के दशक में औद्योगिक क्षेत्र में 'क्षमता के उपयोग'

वर्ष 1991-92 में शुरू की गई औद्योगिक सुधार प्रक्रिया के परिणामस्वरूप संरचनात्मक समायोजन के पहले दो वर्षों में विनिर्माण क्षेत्र में काफी मंदी आ गई।

विभिन्न कारकों जैसे आयात संपीड़न, भारतीय रुपये के मूल्य में भारी अवमूल्यन के कारण आयात लागत में वृद्धि, कठोर मौद्रिक नीति, और उद्यमियों पर लगाए गए नकद मार्जिन आवश्यकताओं के कारण औद्योगिक क्षेत्र में समग्र 'क्षमता के उपयोग' दर में तीव्र गिरावट आई। माँग पक्ष की ओर से, बढ़ती हुई मुद्रा स्फीति और लागू किए गए नए राजकोषीय अनुशासन के परिणामस्वरूप सार्वजनिक व्यय में कमी के कारण प्रभावी माँग में महत्वपूर्ण गिरावट आई।

1991-92 और 1992-93 के वर्षों के दौरान औद्योगिक क्षेत्र में 'क्षमता अल्प के उपयोग' दर, मुख्य रूप से सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था के समष्टि आर्थिक समायोजन के लिए शुरू किए गए स्थिरिकरण उपायों का परिणाम था (देखिए आई सी आई सी आई स्टडी ऑन कैपेसिटी यूटिलाइजेशन इन द प्राइवेट कारपोरेट सेक्टर, 1991-92 और 1992-93)।

धीरे-धीरे अर्थव्यवस्था और विशेष रूप से औद्योगिक क्षेत्र में उदारीकरण उपायों के अनुकूल परिणाम देखने में आने लगे तथा वृद्धि दर तीव्र हुई, निर्यात कार्य निष्पादन में सुधार हुआ और अधिक आत्म निर्भरता बढ़ी (अर्थात् निर्यात आय से अधिक आयात का वित्त पोषण)।

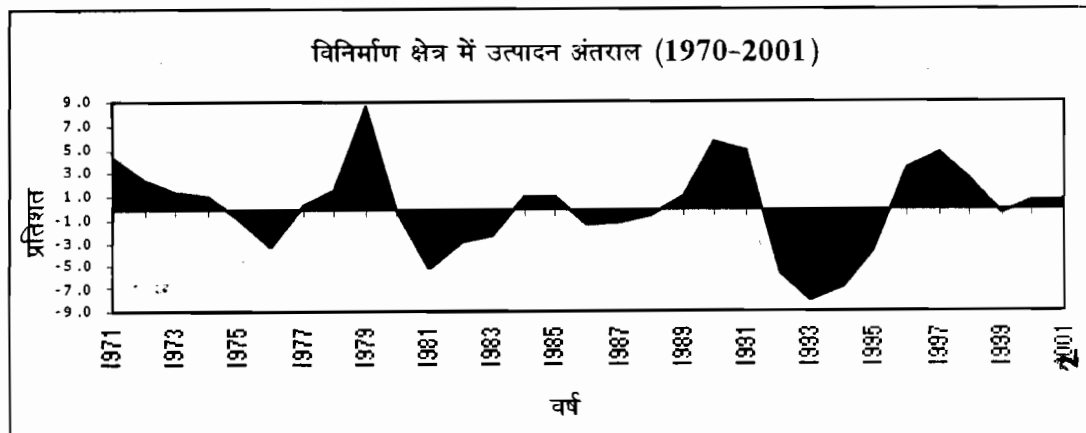
आर. रेगे, निटश्यूर और एम. जोसेफ द्वारा निजी कारपोरेट क्षेत्र की मध्यम और बृहत् कंपनियों के 802 नमूनों के लिए 1999 में अध्ययन किया गया जिससे कई रोचक निष्कर्ष निकले थे। इस अध्ययन में पाँच वर्षों, 1993-94 से 1997-98 तक की अवधि के लिए वास्तविक आँकड़ों के

आधार पर विभिन्न उत्पाद-स्तर 'क्षमता के उपयोग' दरों की गणना की गई थी। इस अध्ययन से पता चलता है कि संरचनात्मक समायोजन के पहले दो वर्षों के बाद 1993-94 से निजी कारपोरेट क्षेत्र का पुनरुद्धार शुरू हुआ जो कि 1996-97 तक क्षमता निर्माण, वास्तविक उत्पादन और 'क्षमता के उपयोग' दर के बढ़ते हुए स्तर तथा 1997-98 तक क्षमता निर्माण से पता चलता है। पूँजीगत वस्तुओं के लिए उदार आयात नीति के फलस्वरूप अधिष्ठापित क्षमता में भारी वृद्धि हुई। इस नीतिगत उपाय के बावजूद भी, अधिष्ठापित क्षमता में वृद्धि उदारीकरण प्रक्रिया के फलस्वरूप निवेश की प्रवृत्ति बढ़ने से, घरेलू पूँजीगत वस्तु क्षेत्र में वृद्धि का अभिप्राय, आय का बढ़ता हुआ स्तर है और हाल ही में जोर पकड़ रहे बाह्य अभिविन्यास (निर्यात को बढ़ावा देना) के परिणामस्वरूप 1996-97 तक निजी कारपोरेट क्षेत्र में 'क्षमता के उपयोग' दर में सतत वृद्धि हुई जो गुणक-त्वरक प्रतिक्रिया (भाग 22.3 में जैसी व्याख्या की गई है) का सूचक है। निजी कारपोरेट क्षेत्र के अंदर भी यह प्रवृत्ति आधारभूत और पूँजीगत वस्तु उद्योगों में अधिक स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुई थी। वर्ष 1993-98 के दौरान 'क्षमता के उपयोग' दर अर्धनिर्मित और टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों के लिए कुछ-कुछ अस्थिर रहा। तथापि, 1997-98 में विभिन्न कारकों के कारण निजी कारपोरेट क्षेत्र का पुनरुद्धार का चरण पलट गया। संकुचन का यह चरण पुनः पहले पूँजीगत वस्तु क्षेत्र में दृष्टिगोचर हुआ तथा इसके बाद उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में आया।

इस अध्ययन से यह पता चला कि पुनरुद्धार चरण (1993-97) के परिणामस्वरूप निजी कारपोरेट क्षेत्र में बड़े पैमाने पर क्षमता का निर्माण किया गया और 1997-98 में औसत रूप से अधिष्ठापित क्षमता का प्रायः 22 प्रतिशत अप्रयुक्त था। इस अध्ययन से यह भी पता चला कि पूँजीगत वस्तु उद्योग में अप्रयुक्त क्षमता का विस्तार सबसे अधिक था और इसके बाद अर्धनिर्मित वस्तु उद्योग का स्थान था। निजी कारपोरेट क्षेत्र में अप्रयुक्त क्षमता के बड़े भाग से यह स्पष्ट तौर पर पता चलता है कि इस क्षेत्र में 1997-98 में उत्पादकों द्वारा वास्तव में क्षमता बाध्यता (प्रतिबंध) पर पहुँचने से काफी पहले ही चक्रीय उतार (आर्थिक क्रियाकलाप में मंदी) देखा गया था। इसका अभिप्राय यह है कि निजी कारपोरेट क्षेत्र से अतिरिक्त निवेश अथवा स्फीतिकारक दबाव के बिना ही और अधिक विकास (अप्रयुक्त नीति पैकेज की सहायता से) करने की भरपूर गुंजाइश है।

इन शोधकर्त्ताओं द्वारा किए गए अर्थमितिपरक कार्य से आगे यह भी पता चला कि नीति से प्रभावित होने वाले तत्व जैसे ऋण की उपलब्धता, आयात उदारीकरण और सरकार द्वारा राजकोषीय प्रबन्धन इसके (चालू परिव्यय के आकार से यथा प्रदर्शित) और प्रभावित करने वाले गैर नीतिगत तत्वों जैसे विभिन्न उत्पाद समूहों के तैयार उत्पादों के लिए घरेलू और बाह्य माँग दोनों ने निजी कारपोरेट क्षेत्र के लिए 1994-98 के दौरान 'क्षमता के उपयोग' दरों में अंतर को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया था।

दुर्भाग्यवश, उदारीकरण पश्चात् अवधि के लिए संपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र (सार्वजनिक और निजी कारपोरेट क्षेत्रों दोनों को सम्मिलित कर) के लिए भिन्न-भिन्न स्तर पर कोई अनुभवमूलक अध्ययन नहीं किया गया है। इस विषय से संबंधित कृतियों में इस 'अंतराल' पर गौर करने के लिए 1970 से 2001 की अवधि के लिए संपूर्ण विनिर्माण क्षेत्र हेतु संभावित (अर्थात् क्षमता) और वास्तविक उत्पादन वृद्धि तथा उत्पादन अंतराल के उतार-चढ़ाव को दिखलाने के लिए थोड़ा अर्थमितिपरक अध्ययन किया गया है। 'उत्पादन अंतराल' की परिभाषा संभाव्य उत्पादन में से वास्तविक उत्पादन घटा कर संभाव्य उत्पादन के अनुपात के रूप में की जाती है। अल्पकाल में, उत्पादन अंतराल के अनुमान 'क्षमता के उपयोग' की सीमा को दर्शाते हैं। सकारात्मक उत्पादन अंतराल से वास्तविक उत्पादन के इसके संभाव्य स्तर से सकारात्मक विपथन का पता चलता है, जबकि नकारात्मक अंतराल का अभिप्राय क्षमता का अल्प उपयोग है। हॉडरिक-प्रेसकॉट फिल्टर के समय शृंखला (टाइम-सीरीज़) तकनीक का उपयोग करके संभाव्य उत्पादन (अर्थात् क्षमता के उत्पादन अथवा प्रवृत्ति उत्पादन) के लिए शृंखला (सीरीज़) का अनुमान किया गया है।



उपर्युक्त चार्ट यह प्रदर्शित करता है कि उदारीकरण के पश्चात् विशेषकर 1993 तक अर्थात् संरचनात्मक समायोजन की अवधि तक नकारात्मक उत्पादन अंतराल (जो क्षमता के कम उपयोग का सूचक है) बहुत बढ़ गया था। नकारात्मक अंतराल 1994 से घटना शुरू हो गया और 1995 तक समाप्त हो गया जो इस बात का द्योतक था कि विनिर्माण क्षेत्र में 'क्षमता के उपयोग' दर में धीरे-धीरे सुधार होने लगा। वर्ष 1996-98 के दौरान लगातार तीन वर्षों तक विनिर्माण क्षेत्र में वृद्धि की प्रवृत्ति बनी रही जो कि भारत की उदारीकरण प्रक्रिया की बहुत बड़ी उपलब्धि थी। तथापि, वर्ष 1999 में उत्पादन अंतराल पुनः नकारात्मक बन गया, जो कि विनिर्माण क्षेत्र में औसत 'क्षमता के उपयोग' दर में गिरावट का द्योतक है तथापि, वर्ष 2000 और 2001 के दौरान 'क्षमता के उपयोग' दर में कुछ सुधार देखा गया था और इन वर्षों में उत्पादन अंतराल पुनः सकारात्मक (यद्यपि कि यह अत्यन्त कम था) हो गया। यहाँ उल्लेखनीय है कि यह 'क्षमता के उपयोग' का मात्र सांकेतिक विश्लेषण है (यूनि-वैरिएट टाइम सीरीज़ विश्लेषण पर आधारित) और यह विस्तृत उत्पाद स्तर विश्लेषण जो फर्म विशेष की व्यष्टि स्तर विशेषताओं को भी हिसाब में लेती है का स्थानापन्न नहीं हो सकता।

22.7 सुझाए गए नीतिगत उपाय

यद्यपि कि आर्थिक सुधारों का आरम्भ अत्यन्त ही सफलतापूर्वक किया गया ये सतत विकास की पूर्व शर्त यानि कि औद्योगिक क्षेत्र में अधिक निवेश को बढ़ावा देने तथा 'क्षमता के उपयोग' दर बेहतर प्राप्त करने में असफल रहे।

- i) राजनीतिक अनिश्चितता और राजनीतिक निर्णय लेने में बढ़ता हुआ "तदर्थवाद" जो किसी दृढ़ संकल्प को प्रदर्शित करने की बजाए संकीर्ण और अल्पकालीन राजनीतिक लक्ष्यों को पूरा करता है, इसका एक कारण है।
- ii) 'क्षमता के उपयोग' की खराब दर के लिए उत्तरदायी दूसरा कारण भारतीय रिजर्व बैंक की मुद्रा नीति और उद्योग मंत्रालय के औद्योगिक नीति के बीच समन्वय का अभाव है। मौद्रिक नियंत्रण के माध्यम से कुल माँग के स्तर को कम करके मुद्रा स्फीति को काबू में रखने के लिए तैयार की गई मुद्रा नीतियों की प्रवृत्ति 'क्षमता की उपयोग' दरों को नीचे रखने तथा अतिरिक्त क्षमता के सृजन को रोकने का काम करती है।
- iii) वित्तीय विनियमों को और कठोर करने से बैंक वाणिज्यिक क्षेत्र को कम ऋण देने लगे तथा उन्होंने सुरक्षित प्रतिलाभ के लिए सरकारी प्रतिभूतियों में अधिक निवेश करना शुरू कर दिया। इसने बैंकों से वाणिज्यिक क्षेत्र को निधियों के प्रवाह पर प्रतिकूल प्रभाव डाला।

- iv) राजकोषीय समेकन के लिए सतत् प्रयास की आवश्यकता होती है क्योंकि सरकार द्वारा बड़े पैमाने पर उधार लेने से ब्याज दरों में वृद्धि होती है (इस प्रकार ऋण लागत में वृद्धि हो जाती है) और निजी क्षेत्र के लिए ऋण निधियों की उपलब्धता घट जाती है।
- v) "आधारभूत संरचना विकास के लिए राष्ट्रीय नीति" की भी आवश्यकता है जो विनियामक और वित्त पोषण तंत्र को स्पष्ट रूप से 'परिभाषित' करता है। यह सामाजिक सुरक्षा और बीमा क्षेत्र में भी व्यापक सुधारों पर बल देता है जो आधारभूत संरचना निवेश के लिए दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध कराएगा। इसके अतिरिक्त, आधारभूत संरचना परियोजनाओं में निवेश को और प्रोत्साहित करने के लिए निजीकरण के जोरदार प्रयास की भी आवश्यकता है।
- vi) सुधारों ने पूँजी संबंधी बाधाओं को कम करने में बहुत हद तक सफलता पाई है किंतु श्रमिकों की कार्यकुशलता में सुधार के लिए बहुत प्रयास नहीं किए गए। श्रमिक नीतियों को युक्तिसंगत बनाने और विशेषकर उद्योगों को बंद करने संबंधी नीति तैयार करने की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न 3

1) 1990 के दशक के औद्योगिक सुधारों का संक्षेप में वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) उदारीकरण उपायों का औद्योगिक क्षेत्र पर निवेश में वृद्धि और 'क्षमता के उपयोग' का कार्य निष्पादन पर कहाँ तक प्रभाव पड़ा?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) इस समय भारतीय औद्योगिक क्षेत्र में 'क्षमता के उपयोग' में सुधार के लिए किन नीतिगत उपायों का सुझाव आप देते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

22.8 सारांश

भारत में उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू हुए एक दशक बीत चुका है और इसका उद्देश्य अर्थव्यवस्था को धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए बाज़ार की शक्तियों पर छोड़ना था। इस प्रक्रिया का सबसे अधिक प्रभाव औद्योगिक क्षेत्र पर पड़ा था और इन बाज़ारोन्मुखी सुधारों का बल प्रतिस्पर्धा बढ़ाने पर था ताकि इस क्षेत्र में अप्रयुक्त उत्पादक क्षमता को या तो बिल्कुल समाप्त कर दिया जाए अथवा इसमें भारी कमी की जाए। संरचनात्मक समायोजन के पहले दो वर्षों को छोड़कर, ये सुधार औद्योगिक वृद्धि को पुनः जीवित करने में सफल रहे तथा इसके दायरे में विभिन्न प्रकार के उद्योग सम्मिलित थे। यद्यपि कि औद्योगिक क्षेत्र पर सुधारों का आरम्भिक प्रभाव सकारात्मक था, इस क्षेत्र में वित्त वर्ष 1997-98 से अनेक उतार-चढ़ाव हुए हैं, जिससे सुधार प्रक्रिया की सततता पर गंभीर संदेह पैदा हो जाता है।

वर्ष 1993-97 के पुनरुद्धार चरण के दौरान, क्षमता का काफी निर्माण किया गया और इस विषय पर नवीनतम अनुभवजन्य अध्ययन से पता चलता है कि वर्ष 1997-98 में निजी कारपोरेट क्षेत्र में कुल अधिष्ठापित क्षमता का करीब 22 प्रतिशत अप्रयुक्त था। यद्यपि नियोजित विकास के अनेक दशकों में औद्योगिक क्षेत्र में 'क्षमता के उपयोग' में क्रमशः सुधार हुआ है, जिस सीमा तक क्षमता अप्रयुक्त रहती है वह संसाधनों की उतनी ही अधिक बर्बादी का द्योतक है।

22.9 शब्दावली

मूल वस्तुएँ	:	यह औद्योगिक उत्पादन में प्रमुख अथवा मूल आदान हैं जैसे उर्वरक और भारी रसायन, सीमेंट, मूल धातु, विद्युत और खनन।
अर्धनिर्मित वस्तुएँ	:	यह ऐसे कच्चे माल/आदान हैं जिनका उत्पादन की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों के बीच में प्रयोग किया जाता है जैसे लकड़ी और कॉर्क, अखबारी कागज़ (न्यूज़प्रिण्ट), चमड़ा, रबर उत्पाद, पेट्रोलियम उत्पाद, स्टोरेज बैटरी, बोल्ट, नट, कील इत्यादि।
पूँजीगत वस्तुएँ	:	इसमें मुख्य रूप से मशीनें और उपकरण और भारी व्यावसायिक वाहन सम्मिलित हैं।
टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ	:	इसमें व्हाइट गुड्स, सवारी कार, फर्नीचर और फिक्सचर्स (जुड़नार) इत्यादि हैं जिनका उपभोक्ता सीधे उपयोग करते हैं तथा ये टिकाऊ होते हैं।
गैर टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ	:	इसमें भी खाद्य पदार्थ, पेय पदार्थ (बीवरेज), जूते-चप्पल, दवाइयाँ, काँच के उत्पाद, कॉस्मेटिक इत्यादि जिनका उपभोक्ता सीधे उपयोग करते हैं किंतु अपेक्षाकृत कम टिकाऊ होते हैं।
निवेश	:	निवेश व्यय का मूल संरचनात्मक संघटक होता है क्योंकि यह भावी उत्पादन का आधार तैयार

करता है। इसमें कारखाना, मशीनों, उपकरणों, आवासों और कच्चे माल के भण्डार सम्मिलित होते हैं।

उत्पादकता	:	उत्पादकता, घटक आदानों (मुख्यतः भूमि, श्रमिक और पूँजी) की दी गई मात्रा से उत्पादित उत्पादन की मात्रा का पैमाना है।
उदारीकरण और विनियमों में ढील	:	एक प्रक्रिया जो निवेश, उत्पादन, मूल्यों, ब्याज दरों, ऋण, विदेशी मुद्रा पर से नियंत्रण को समाप्त कर देता है अथवा हटा देता है और बाजार की शक्तियों के अनुरूप भागीदारों को प्रवेश की छूट देता है।

22.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ

आहलूवालिया, आई. जे. (1991). प्रोडक्टिविटी एण्ड ग्रोथ इन इंडियन मैनुफैक्चरिंग, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

आहलूवालिया, आई. जे. और लिटिल, आई.एम.डी. (1998). इण्डियाज़ इकनॉमिक रिफॉर्मस् एण्ड डेवलपमेंट: एसेज़ फॉर मनमोहन सिंह, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन, राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी, योजना और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, भारत सरकार, विभिन्न खंड (Volumes)।

चन्द्रशेखर, एस. (1990). कैपेसिटी यूटिलाइजेशन इन इण्डियन इण्डस्ट्रीज़, दया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

इकोनोमिस्ट (1997). गाइड टू इकनॉमिक इंडिकेटर्स : मेकिंग सेंस ऑफ इकनॉमिक्स, तीसरा संस्करण, प्रोफाइल्स बुक लिमिटेड, लंदन

आई.सी.आई.सी.आई. (1994). कैपेसिटी यूटिलाइजेशन इन दि प्राइवेट कारपोरेट सेक्टर: 1991-92 ओर 1992-93, आई.सी.आई.सी.आई. लिमिटेड

रूपा रीगे निटश्रूर एण्ड मैथ्यू जोसेफ (1999). "लिबरलाइजेशन एण्ड दि बिहैवियर ऑफ इंडियन इण्डस्ट्री: ए कारपोरेट सेक्टर एनालिसिस बेस्ड ऑन कैपेसिटी यूटिलाइजेशन", प्रेजेण्टेड एट 1999 ए.बी.ए.एस. इंटरनेशनल कान्फ्रेंस ऑन "ग्लोबलाइजेशन एण्ड इमर्जिंग इकनॉमिक्स" बार्सेलोना, स्पेन में (12-15 जुलाई, 1999 तक)।

22.11 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

- 1) भाग 22.1 देखें।
- 2) भाग 22.2 देखें।
- 3) भाग 22.4 देखें।

बोध प्रश्न 2

- 1) भाग 22.5 देखें।
- 2) भाग 22.5 देखें।
- 3) भाग 22.5 देखें।

बोध प्रश्न 3

- 1) उपभाग 22.6.1 देखें।
- 2) उपभाग 22.6.2 देखें।
- 3) उपभाग 22.7 देखें।